भारत - वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव का प्रबंधन *

डी. सुब्बाराव

भूमिका

1. पिछले एक वर्ष से भी कम अवधि में पिछले अक्तूबर से भारतीय अर्थव्यवस्था में जो हुआ उसका अनुमान लगाना कठिन था। मुझे याद है कि पिछले साल की इस अवधि में बार-बार पूछे जानेवाले प्रश्न वे थे कि वे कौनसे कारक हैं जिन्होंने भारत को उच्च वृद्धि पथ पर रखा और इस संबंध में हम क्या कर सकते हैं? आज बार-बार पूछे जानेवाले प्रश्न वे हैं कि हम उच्च वृद्धि पथ पर कब और कैसे वापस पहुंचेंगे? बार-बार पूछे जानेवाले प्रश्नों में यह तेज परिवर्तन भारत पर वैश्विक वित्तीय संकट के प्रभाव को संक्षेप में दर्शा देता है।

वैश्विक परिदृश्य

2. वैश्विक आर्थिक परिदृश्य पिछली तिमाही में तेजी से खराब हुआ है। मंदी की गंभीरता के चिह्न के रूप में आइएमएफ ने पुनः 2009 में वैश्विक वृद्धि के अपने अनुमान को (-) 1.0 से (-) 0.5 प्रतिशत के दायरे में नीचे निर्धारित किया है जो कि 60 वर्षों में पहला वैश्विक संकुचन है। अमरीका, यूरोप और जापान जैसी सभी विकसित अर्थव्यवस्थाओं के तेज गति से मंदी में जाने के कारण इस संकट का वित्तीय क्षेत्र से वास्तविक क्षेत्र में हुआ प्रसार अविस्मरणीय और समग्र रहा है। हाल की घटनाएं बतलाती हैं कि संकुचनकारी शक्तियां प्रभावी हैं: मांग घट गई है, उत्पादन घट रहा है, नौकरियां जाने की घटनाएं बढ़ रही हैं और ऋण बाजार सीमित बना हुआ है। अधिक चिंता की बात यह है कि विश्व व्यापार - वह मुख्य मार्ग जिसके माध्यम से मंदी आगे बढ़ेगी - 2009 में 2.8 प्रतिशत संकुचित होने का अनुमान है जो कि पिछले 80 वर्षों में सबसे तेज संकुचन होगा।

3. विश्व भर में नीति निर्माण का कार्य स्पष्ट रूप से स्वरूपहीन क्षेत्र है। अनेक देशों की सरकारों और केंद्रीय

* नई दिल्ली में 26 मार्च 2009 को आयोजित भारतीय उद्योगों के राष्ट्रीय सम्मेलन और वार्षिक सत्र 2009 के महासंघ में डॉ. दुव्वुरी सुब्बाराव, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा दिया गया भाषण।

बैंकों ने इस संकट का उत्तर व्यापक, आक्रामक और अपारंपारिक उपायों से दिया है। इस संबंध में व्यापक चर्चा हो रही है कि ये उपाय पर्याप्त और उचित हैं या नहीं और वे परिणाम दिखलाना कब शुरू करेंगे। इस पर भी अलग से वाद-विवाद हो रहा है कि अल्पावधि के एकाधिकार से प्रेरित रुल बुक को छोड़ देने से मध्यावधि की स्थिरता के साथ किस प्रकार से समझौता किया जा रहा है। फिर भी, यह बात वाद-विवाद से परे है कि 2008/09 की यह भयानक मंदी और गहरी होने जा रही है और इसमें सुधार होने में पहले की सोच से अधिक समय लगेगा।

डिकपलिंग कल्पना और उभरती अर्थव्यवस्थाएं

4. 'डिकपलिंक कल्पना' के विपरीत उभरती अर्थव्यवस्थाओं पर भी उक्त संकट का प्रभाव हुआ है। डिकपलिंक कल्पना जो कि एक वर्ष पहले तक भी बुद्धिवादी रूप से चल रही थी, उसमें यह धारणा थी कि विकसित अर्थव्यवस्थाओं में मंदी आने के बावजूद उभरती अर्थव्यवस्थाएं अपने पर्याप्त विदेशी मुद्रा भंडार, सुधरे हुए नीतिगत ढांचे, मजबूत कारपोरेट तुलन पत्र और तुलनात्मक रूप से सुदृढ़ बैंकिंग क्षेत्र के कारण मंदी से बची रहेंगी। तेजी से वैश्विकृत हो रहे विश्व में डिकपलिंक कल्पना कभी भी पूर्णतः अनुकरणीय नहीं थी। पिछले कुछ महीनों की घटनाओं - पूंजी प्रवाह में प्रतिगमन, सरकारी और कंपनी ऋण पर विस्तार में तेज वृद्धि और तेज मुद्रा मूल्यह्रास - को देखते हुए डिकपलिंक कल्पना पुरानी हो गई है। इस अनुमान को अपनाते हुए की वैश्विकृत विश्व में कोई भी देश एक टापू नहीं हो सकता, उभरती अर्थव्यवस्थाओं की वृद्धि संभावना विभिन्न देशों में पर्याप्त अंतर के साथ क्रमिक वित्तीय संकट से धूमिल हो गई।

ध्यान दिए जाने वाले प्रश्न

5. भारत पर भी उक्त संकट का परिणाम हमारी सोच से ज्यादा हुआ है। इसके मद्देनजर, मैं निम्नलिखित प्रश्नों पर ध्यान देने का प्रस्ताव करता हूँः

(i) भारत इस संकट की चपेट में क्यों आया?

(ii) भारत पर इस संकट का कैसा प्रभाव हुआ है?

(iii) हमने इस चुनौती का सामना किस प्रकार से किया है?

6. उक्त तीन प्रश्नों के उत्तर चौथे प्रश्न का आधार तैयार करते हैं और यह प्रश्न शायद ज्यादा महत्वपूर्ण है।

(iv) भारत के लिए क्या संभावना है?

भारत इस संकट की चपेट में क्यों आया?

7. जितनी शक्ति से वैश्विक संकट ने भारत को प्रभावित किया उससे अनेक लोग परेशान हो गए। यह परेशानी दो विश्लेषणात्मक तत्वों से उभरती है।

8. पहला विश्लेषण कुछ इस प्रकार से है। भारतीय बैंकिंग प्रणाली का सब-प्राईम बंधक आस्तियों या असफल संस्थाओं के प्रति कोई प्रत्यक्ष एक्सपोज़र नहीं था। इसकी बहुत कम तुलनपत्रेतर गतिविधियां थीं या प्रतिभूतिकृत आस्तियां थीं। वस्तुतः हमारे बैंक मजबूत बने हुए हैं। अतः पहेली यह है कि भारत इस संकट की चपेट में कैसे आ गया जबकि इस संकट के मूल कारणों से भारत का कुछ खास संबंध नहीं था।

9. उक्त परेशानी का दूसरा कारण यह है कि भारत की हालिया वृद्धि का मुख्य कारण देशी उपभोग और देशी निवेश रहा है। वणिक माल के निर्यात से नापी गई बाह्य मांग हमारी जीडीपी के 15 प्रतिशत से भी कम है। तब

प्रश्न यह है कि जब भारत की निर्भरता बाह्य मांग पर इतनी कम है तो वैश्विक मंदी होने के बावजूद भारत पर उसका असर क्यों होना चाहिए?

10. परेशानी के उक्त दोनों कारणों का उत्तर वैश्विकरण में है। मैं इसे स्पष्ट करना चाहता हूँ। पहला, वैश्विक अर्थव्यवस्था में पिछले दशक में भारत का समन्वय तेजी से बढ़ा है। विश्व में समन्वय के लिए मात्र निर्यात से अधिक प्रयासों की आवश्यकता होती है। वैश्विकरण की सामान्य नाप के अनुसार जीडीपी के अनुपात के रूप में भारत का दोतर्फा व्यापार (वाणिक माल निर्यात + आयात) एशियाई संकट के वर्ष अर्थात 1997-98 के 21.2 प्रतिशत से बढ़कर 2007-08 में 34.7 प्रतिशत हो गया।

11. दूसरा, भारत का विश्व के साथ वित्तीय समन्वय अधिक नहीं तो कम-से-कम भारत के व्यापार वैश्विकरण जितना गहरा तो रहा ही है। यदि हम वैश्विकरण की विस्तारित नाप लेते हैं अर्थात जीडीपी के प्रति कुल बाह्य लेनदेन (सकल चालू खाता प्रवाह + सकल पूंजी प्रवाह) का अनुपात 1997-98 के 46.8 प्रतिशत से दुगुने से भी अधिक बढ़कर 2007-08 में 117.4 प्रतिशत हो गया।

12. महत्वपूर्ण रूप से, भारतीय कंपनी क्षेत्र की बाह्य निधीयन तक पहुंच पिछले पांच वर्षों में काफी बढ़ गई है। इस बात को कुछ आंकड़े स्पष्ट कर देंगे। 2003-08 के पांच वर्षों की अवधि में भारत की जीडीपी में कंपनी निवेश का हिस्सा 9 प्रतिशत अंक बढ़ा। कंपनी बचत ने इसके आधे से कुछ ज्यादा का वित्तपोषण किया किंतु शेष वित्तपोषण का बढ़ा हिस्सा बाह्य स्रोतों से आया। जहां निधी देशी तौर पर उपलब्ध थी, वहीं विदेशी निधीयन देशी वित्तपोषण की तुलना में कम महंगा दिख रहा था। दूसरी ओर, चलनिधि से भरे हुए वैश्विक बाजार में और भारतीय वृद्धि की संभावना की स्पष्टता के कारण विदेशी निवेशक और उधारदाता जोखिम उठाने और भारत में निवेश का वित्तपोषण करने के लिए तैयार थे। उदाहरण के लिए, पिछले वर्ष (2007-08) भारत को जीडीपी के 9 प्रतिशत से अधिक की राशि का पूंजी अंतर्वाह प्राप्त हुआ जबकि भुगतान संतुलन में चालू खाते का घाटा जीडीपी के मात्र 1.5 प्रतिशत ही था। चालू खाते के घाटे के अतिरिक्त ये पूंजी प्रवाह कंपनियों के बाह्य वित्तपोषण का महत्व और भारतीय वित्तीय समन्वय की गहराई सिद्ध करते हैं।

13. अतः मंदकारी कारकों के बावजूद भारत पर उक्त संकट का असर होने का कारण भारत का वैश्विक अर्थव्यवस्था के साथ तेजी से बढ़ता हुआ समन्वय ही है।

भारत पर इस संकट का कैसा प्रभाव हुआ है?

14. इस संकट का संसर्ग भारत में सभी माध्यमों - वित्तीय माध्यम, वास्तविक माध्यम और महत्वपूर्ण रूप से जैसा कि सभी वित्तीय संकटों में होता है, विश्वास माध्यम से आया।

15. सबसे पहले हम वित्तीय माध्यम पर नजर डालेंगे। भारत के वित्तीय बाजार - इक्विटी बाजार, मुद्रा बाजार, विदेशी मुद्रा बाजार और ऋण बाजार - अनेक दिशाओं से दबाव में आ गए थे। पहला, वैश्विक चलनिधि की कमी के परिणाम के रूप में भारतीय कंपनियों का विदेशी वित्तपोषण कम होने लगा जिससे वे अपनी ऋण मांग देशी बैंकिंग क्षेत्र की ओर अंतरित करने के लिए बाध्य हो गए। इसके अलावा, स्थानापन्न वित्तपोषण की अपनी खोज में कंपनियों ने देशी मुद्रा बाजार पारस्परिक निधियों से अपने निवेश वापस ले लिए; परिणामस्वरूप, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां, जहां पारस्परिक निधियों ने अपनी

निधियों का बड़ा हिस्सा निवेश किया था, शोधन दबाव में आ गईं। विदेशी वित्तपोषण के देशी वित्तपोषण द्वारा इस प्रतिस्थापन से मुद्रा बाजार और ऋण बाजार दोनों ही दबाव में आ गए। दूसरा, वैश्विक अधोगामी प्रक्रिया के एक भाग के रूप में पूंजी प्रवाह की प्रतिगामिता के कारण विदेशी मुद्रा बाजार दबाव में आ गए। इसके साथ-साथ, कंपनियां स्थानीय रूप से जुटाई गई निधि को अपने विदेशी दायित्व पूरे करने के लिए विदेशी मुद्रा में परिवर्तित कर रही थीं। ये दोनों कारक रुपए पर अधोगामी दबाव बनाते हैं। तीसरा, रुपए की अस्थिरता के प्रबंधन के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा विदेशी मुद्रा बाजार में किए गए हस्तक्षेप के कारण चलनिधि की स्थिति और भी तंग हो गई।

16. अब मैं वास्तविक माध्यम पर आता हूँ। यहां, वैश्विक संकेतों का देशी अर्थव्यवस्था में अंतरण एकदम सीधा रहा है जो कि निर्यात मांग में गिरावट के माध्यम से हुआ था। अमरीका, यूरोपीय संघ और मध्य-पूर्व, जिनके साथ भारतीय माल और सेवा व्यापार का तीन-चौथाई भाग जुड़ा हुआ है, एक जैसी मंदी की चपेट में आ गए। मंदी गहरी हो जाने और वित्तीय सेवाओं के फर्म - आउटसोर्सिंग सेवाओं के पारंपरिक रूप से मुख्य उपयोगकर्ता - पुनर्गठित होने के कारण सेवा निर्यात वृद्धि निकट भविष्य में कम होने की संभावना है। मध्य-पूर्व द्वारा कच्चे तेल की कम कीमतों से समायोजन करने और विकसित देशों में मंदी आने के कारण प्रवासी कामगारों के विप्रेषण में भी कमी आने की संभावना है।

17. अंतरण के उक्त वित्तीय और वास्तविक माध्यमों के अलावा यह संकट विश्वास माध्यम से भी फैलता है। वैश्विक वित्तीय बाजारों, जो विश्वास के संकट के कारण सीमित हो गए थे, के एकदम विपरीत भारतीय वित्तीय बाजार व्यवस्थित रूप से कार्यरत थे। इसके अलावा, हमारे बैंकों ने उधार देना जारी रखा। किंतु, सितंबर 2008 के मध्य में लेहमन असफलता के तुरंत बाद की अवधि की वैश्विक चलनिधि की तंग हालत, ऋण चक्र में परिवर्तन के शीर्ष पर आए अनुसार, ने वित्तीय प्रणाली जोखिम अरुचि बढ़ा दी और कुछ बैंकों को उधार के बारे में सावधान कर दिया।

18. उक्त स्पष्टीकरण का उद्देश्य यह दिखलाना है कि वैश्विक वित्तीय क्षेत्र की समस्याओं का भाग न होते हुए भी भारत विदेशी आघातों और देशी भेद्यता के बीच प्रतिकूल प्रतिसूचना स्थिति के कारण उक्त संकट से किस प्रकार प्रभावित हुआ।

हमने इस चुनौती का सामना किस प्रकार से किया है?

19. अब मैं इस बात पर आता हूँ कि हमने इस संकट का सामना कैसे किया। सितंबर 2008 के मध्य में लेहमन ब्रदर्स की असफलता की तुरंत बाद कई अन्य बड़ी वित्तीय संस्थाएं भारी दबाव में आ गई थीं। इससे विश्व के अनेक वित्तीय बाजारों में अनिश्चितता और अस्थिरता आ गई। जैसा कि मैंने ऊपर स्पष्ट किया है, यह संक्रमण उभरती अर्थव्यवस्थाओं और भारत तक भी फैल गया। सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक दोनों ने इस चुनौती का सामना घनिष्ठ समन्वय और परामर्श करके किया। सरकार के प्रतिसाद में मुख्य बल राजकोषीय उत्प्रेरण पर था जबकि रिज़र्व बैंक की कार्रवाई में मौद्रिक सहायता और प्रति-चक्रीय विनियामक उपाय शामिल थे।

मौद्रिक नीतिगत प्रतिसाद

20. रिज़र्व बैंक के नीतिगत प्रतिसाद का लक्ष्य उक्त संक्रमण को बाहर से दबाना था ताकि देशी मौद्रिक और

ऋण बाजार सामान्य रूप से कार्यरत रहें और चलनिधि का दबाव शोधन क्षमता को प्रभावित न कर पाए। विशेष तौर पर, हमने तीन उद्देश्यों को लक्ष्य बनाया: पहला, रुपया चलनिधि की स्थिति अनुकूल बनाए रखना; दूसरा, विदेशी मुद्रा चलनिधि बढ़ाना; और तीसरा, एक ऐसा नीतिगत ढांचा बनाए रखना जो ऋण सुपुर्दगी को ठीक रखेगा ताकि वृद्धि की कमी को रोका जा सके। इससे पिछली अवधि के उच्चतम स्फीतिकारी दबाव के प्रतिसाद में मौद्रिक कड़ाई से घुमकर रिज़र्व बैंक का नीतिगत रुझान कम होते स्फीतिकारी दबाव और चालू चक्र में कम वृद्धि के प्रतिसाद में मौद्रिक शिथिलता पर आ गया। उक्त उद्देश्यों को पूरा करने के हमारे प्रयास सितंबर 2008 के मध्य में प्रारंभ हुए अनेक नीतिगत पैकेजों के रूप में आए जो कभी-कभी अनपेक्षित वैश्विक घटनाओं और कभी-कभी भारतीय बाजारों पर संभाव्य वैश्विक घटनाओं के प्रभाव की अपेक्षा के प्रतिसाद के रूप में थे।

21. अन्य केंद्रीय बैंकों जैसे ही हमारे नीतिगत पैकेजों में पारंपरिक और अपारंपरिक दोनों ही उपाय शामिल थे। पारंपरिक पक्ष में हमने नीतिगत ब्याज दरें बड़ी मात्रा में और तेजी से कम कीं, केंद्रीय बैंक द्वार अवरुद्ध बैंक आरक्षित निधि की मात्रा घटाई और निर्यात ऋण के लिए पुनर्वित्त सुविधा का विस्तार किया और उसे उदार बनाया। विदेशी मुद्रा चलनिधि के प्रबंधन पर केंद्रित उपायों में अनिवासी भारतीयों की विदेशी मुद्रा जमाराशियों पर उच्चतम ब्याज दर के ऊर्ध्वमुखी समायोजन, कंपनियों के लिए बाह्य वाणिज्यिक उधार व्यवस्था को पर्याप्त रूप से शिथिल करना और गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों तथा आवासीय वित्त कंपनियों को विदेशी उधार तक पहुंच देना शामिल है।

22. भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा उठाए गए अनेक अपारंपरिक कदमों में से महत्वपूर्ण इस प्रकार हैं: भारतीय बैंकों को उनकी अल्पावधि विदेशी निधीयन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्हें रुपया-डॉलर विनिमय सुविधा देना, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों की सहायतार्थ एक्सक्लूजीव रिफाइनान्स विंडो की व्यवस्था और उधारयोग्य उपलब्ध स्रोतों को लघु उद्योगों, आवास तथा निर्यात के लिए दिए गए ऋण के वित्तपोषण के लिए शीर्ष वित्तीय संस्थाओं को देना। आस्तियों को अधोमूल्यित करने वाले घटनाक्रम को दर्शाते हुए हमने 2006 में लागू किए गए प्रति-चक्रीय विनियामक उपायों को उलट दिया।

सरकारी राजकोषीय उत्प्रेरण

23. पिछले पांच वर्षों में भारत में केंद्र और राज्य दोनों सरकारों ने भूतकालीन राजकोषीय अधिकता को उलटने के गंभीर प्रयास किए हैं। इन उपायों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण राजकोषीय जवाबदेही और बजट प्रबंधन अधिनियम (एफआरबीएम) था जिसने राजकोषीय स्थिरता के लिए क्रमबद्ध रोड मैप सुनिश्चित कर दिया।

24. तथापि, इस संकट की गहराई और उसके असाधारण प्रभाव ने प्रति-चक्रीय सार्वजनिक व्यय की आवश्यकता स्पष्ट रूप से दिखा दी। तदनुसार, केंद्र सरकार ने राजकोषीय लक्ष्यों से छूट प्राप्ति के लिए एफआरबीएम अधिनियम के आपातकालीन प्रावधानों का सहारा लिया और दिसंबर 2008 तथा जनवरी 2009 में दो राजकोषीय उत्प्रेरण पैकेज लाए। इन राजकोषीय उत्प्रेरण पैकेजों की संयुक्त राशि जीडीपी के लगभग 3 प्रतिशत थी और इसमें अतिरिक्त सार्वजनिक व्यय, बुनियादी सुविधाओं पर व्यय के लिए सरकारी गारंटीयुक्त निधि, अप्रत्यक्ष्य करों में कटौती, व्यष्टि और लघु उद्यमों के लिए विस्तारित गारंटी कवर और निर्यातकों के लिए अतिरिक्त

सहायता शामिल थे। ये उत्प्रेरक पैकेज ग्रामीण गरीब लोगों के लिए पहले से ही घोषित विस्तारित सुरक्षा नेट, कृषि ऋण माफी पैकेज और सरकारी स्टाफ के लिए वेतन वृद्धि के शीर्ष पर आ गए ओर इन सब से मांग उत्प्रेरित होने की संभावना है।

मौद्रिक उपायों का प्रभाव

25. संयुक्त रूप से, सितंबर 2008 के मध्य में प्रारंभ किए गए उपायों ने सुनिश्चित किया कि भारतीय वित्तीय बाजार उचित पद्धति से कार्यरत रहें। इन उपायों के माध्यम से वित्तीय प्रणाली को संभाव्य रूप से उपलब्ध प्राथमिक चलनिधि की कुल राशि लगभग 390,000 करोड़ रुपए या जीडीपी के 7 प्रतिशत है। इस पर्याप्त सुगमता ने नवंबर 2008 के मध्य से शुरू हुई अनुकूल चलनिधि की स्थिति सुनिश्चित की है जो कि अनेक संकेतकों से सिद्ध होती है जिनमें भारांकित औसत मांग मुद्रा दर, एक दिवसीय मुद्रा बाजार दर और 10-वर्षीय बैंचमार्क सरकारी प्रतिभूति पर आय शामिल है। नीतिगत दर कटौती से संकेत लेते हुए अनेक बड़े बैंकों ने उनकी बैंचमार्क मूल उधार दरें कम की है। बैंक ऋण भी बढ़ा है लेकिन पिछले वर्ष की तुलना में इसकी गति कम है। किंतु, रिज़र्व बैंक की स्थूल गणना दर्शाती है कि वाणिज्यिक क्षेत्र की ओर कुल संसाधन प्रवाह पिछले वर्ष की तुलना में कम है। इसका कारण यह है कि बैंक ऋण बढ़ने के बावजूद वाणिज्यिक क्षेत्र को बैंकेतर संसाधन प्रवाह में हुई गिरावट को यह पूर्णतः ठीक नहीं कर पाया।

प्रतिसाद का मूल्यांकन

26. उक्त संकट के प्रतिसाद के मूल्यांकन में यह स्मरण करना महत्वपूर्ण है कि इस संकट का मूल विश्व भर में एक समान होने के बावजूद इस संकट में विभिन्न अर्थव्यवस्थाओं पर अलग-अलग प्रभाव डाला है। महत्वपूर्ण रूप से, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में, जहां इसकी शुरुआत हुई थी, यह संकट वित्तीय क्षेत्र से वास्तविक क्षेत्र में बढ़ा। उभरती अर्थव्यवस्थाओं में बाह्य आघातों के देशी भेद्यताओं में संप्रेषण पारंपरिक रूप से वास्तविक क्षेत्र से वित्तीय क्षेत्र की ओर रहा है।

27. देशों ने उक्त संकट का सामना अपनी स्थिति के अनुसार किया है। इस प्रकार, विभिन्न देशों मे नीतिगत प्रतिसाद सामान्यतः एक समान होने के बावजूद उनके विशिष्ट स्वरूप, मात्रा, क्रम और समय में अंतर है। विशेष रूप से, विकसित अर्थव्यवस्थाओं में नीतिगत प्रतिसाद में अप्रकट वित्तीय संकट और गहराती मंदी से सामना किया जाना था, वहीं भारत में हमारा प्रतिसाद मुख्य रूप से आर्थिक वृद्धि में कमी को रोकने पर केंद्रित था।

भारत के लिए संभावना

28. भारत के लिए संभावना मिश्रित स्वरूप की है। आर्थिक गतिविधियां कम होने के स्पष्ट संकेत हैं। वास्तविक जीडीपी वृद्धि 2008-09 की पहली और दूसरी तिमाही में थोड़ी कम रही है और तीसरी तिमाही में तेजी से कम हुई है। सेवा क्षेत्र, जो कि पिछले पांच वर्षों में हमारी वृद्धि का मूल प्रेरक रहा है, मंद हो रहा है और यह मंदी मुख्यतः निर्माण, परिवहन और संप्रेषण, व्यापार, होटल और रेस्टॉरेन्ट्स के उप क्षेत्र में है। सात वर्षों में पहली बार अक्तूबर 2008 - जनवरी 2009 के दौरान लगातार चार महीनों में निर्यात समग्र दृष्टि से कम हो गए। हाल के आंकड़े दर्शाते हैं कि प्रणाली में अनुकूल चलनिधि की स्थिति के बावजूद बैंक ऋण की मांग घट रही है। मांग में मंदी के कारण कंपनी मार्जिन कम हो गई है जबकि संकट संबंधी अनिश्चय ने कारोबार विश्वास

को प्रभावित किया है। औद्योगिक उत्पादन सूचकांक ने हाल के दो महीनों में ऋणात्मक वृद्धि दर्शाई है और निवेश मांग घट रही है। ये सभी कारक बतलाते हैं कि वृद्धि हमारी पूर्ववर्ती सोच से भी अधिक कम रहेगी।

29. इस संकट के आगमन का सामना करने में भारत की स्थिति अच्छी है। इनमें से कुछ हाल की घटनाएं हैं। इनमें से सर्वाधिक उल्लेखनीय हेडलाईन मुद्रास्फीति, जो थोक मूल्य सूचकांक से मापी जाती है, में तेज गिरावट आई जबकि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में अभी भी कमी होनी है। स्पष्ट रूप से, गिरते हुए पण्य मूल्य अवस्फीति के पीछे के मुख्य प्रेरक रहे हैं; किंतु कम होती हुई देशी मांग से भी कुछ सहयोग मिला है। मुद्रास्फीति में गिरावट से उपभोग मांग बढ़ेगी और उसे सहारा मिलेगा तथा कंपनियों की इनपुट लागत कम होगी। इसके अलावा, वैश्विक कच्चे तेल की कीमतों और नाफ्ता की कीमतों में गिरावट जारी रहती है तो तेल और उर्वरक कंपनियों की सब्सिडी कम हो जाएगी और बुनियादी सुविधाओं पर व्यय का राजकोषीय स्थान खुल जाएगा। बाह्य क्षेत्र की संभावना से यह अनुमान लगाया गया है कि आयात में निर्यात की अपेक्षा अधिक संकुचन होगा जिससे चालू खाते का घाटा कम रहेगा।

30. ऐसे अनेक ढांचागत कारक हैं जिनसे भारत को सहायता मिली है। पहला, बाह्य आघातों की गंभीरता और बहुगुणकता के बावजूद भारतीय वित्तीय बाजारों ने प्रशंसनीय लोच दिखाई है। यह बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय बैंकिंग प्रणाली मजबूत, स्वस्थ, सुपूंजीकृत और विवेकपूर्ण रूप से विनियमित है। दूसरा, आरक्षित निधि की हमारी अनुकूल स्थिति विदेशी निवेशकों का विश्वास बढ़ाती है। तीसरा, अधिकांश भारतीय इक्विटी और आस्ति बाजारों में सहभागी नहीं होते, अतः विकसित अर्थव्यवस्थाओं को परेशान करनेवाला धन-हानि का नकारात्मक प्रभाव काफी कम है। परिणामस्वरूप, उपभोग मांग बनी रहेगी। चौथा, भारतीय प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्र के उधार की अधिदेशात्मकता के कारण कृषि का संस्थागत ऋण अप्रभावित रहा है। सरकार द्वारा लागू कृषि ऋण माफी पैकेज ने कृषि क्षेत्र को इस संकट से और भी उबारना चाहिए। अंत में, वर्षों में, भारत ने सामाजिक सुरक्षा - नेट कार्यक्रमों का गहन नेटवर्क तैयार किया है जिसमें ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम जैसा मुख्य कार्यक्रम भी शामिल है। स्वस्थिरीकरण के इन विशिष्ट भारतीय रूप ने वैश्विक संकट के घातक प्रभाव से गरीबों की रक्षा करनी चाहिए।

भारतीय रिज़र्व बैंक का नीतिगत रुझान

31. भावी परिदृश्य में रिज़र्व बैंक का नीतिगत रुझान रुपया और विदेशी निधि की चलनिधि की स्थिति निरंतर अनुकूल बनाए रखने का होगा। पारस्परिक निधि पर दबाव डालने वाले संकेतक अनुकूल हो गए हैं और एनबीएफसी भी उनकी आस्तियों और देयताओं के आवश्यक समायोजन कर रही हैं। निर्यात मांग में संकुचन के बावजूद हम अपने भुगतान संतुलन का प्रबंधन कर सकेंगे। रिज़र्व बैंक की यह अपेक्षा है कि वाणिज्य बैंक अपनी जमा और उधार दरों के समायोजन के लिए नीतिगत दर-कटौती से संकेत लेंगे ताकि उत्पादक क्षेत्रों की ओर ऋण-प्रवाह बना रहे। विशेष रूप से, रिज़र्व बैंक द्वारा एमएसएमई (व्यष्टि, लघु और मझौले उद्यम) क्षेत्र, आवास क्षेत्र और निर्यात क्षेत्र के लिए खोले गए विशेष पुनर्वित्त माध्यम ने यह देखना चाहिए कि इन क्षेत्रों की ओर ऋण-प्रवाह बना रहे। इसके अलावा, एनबीएफसी को सहयता देने के लिए गठित एसपीवी ने एनबीएफसी

के वित्तपोषण की बाधाओं को दूर करना चाहिए। सरकारी राजकोषीय उत्प्रेरण को इन प्रयासों के आपूर्ति और मांग दोनों पक्षों की ओर से संपूरक होना चाहिए।

सुधार कब आएगा

32. पिछले पांच वर्षों में भारत की वृद्धि नौ प्रतिशत के अपूर्व स्तर तक पहुंच गई थी जिसके मुख्य प्रेरक देशी उपभोग और निवेश थे भलेही निवल निर्यात का हिस्सा बढ़ता रहा हो। यह अचानक या संयोग से नहीं हुआ था। यह सत्य है कि बढ़िया वैश्विक वातावरण, सुगम चलनिधि और कम ब्याज दरों ने सहायता की, किंतु भारत की वृद्धि के मूल में उद्यमशीलता की बढ़ती भावना, उत्पादकता में वृद्धि और बढ़ती हुई बचत थी। ये मूल शक्तियां लगातार बनी हुई हैं। फिर भी, वैश्विक संकट निवेश और निर्यात मंद हो जाने से भारत का वृद्धि पथ प्रभावित होगा। स्पष्ट रूप से, हमारे आगे दुखदायी समायोजन का समय है। किंतु, वैश्विक अर्थव्यवस्था में सुधार शुरू होते ही भारत की प्रगति तेजी से होगी जिसे हमारे मजबूत मूल तत्वों और निर्बाध वृद्धि संभावना की सहायता प्राप्त होगी। इस बीच, सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक के सामने समायोजन को न्यूनतम परेशानी के साथ प्रबंधित करने की चुनौती है।